पंजाब राज्य एवं अन्य

बनाम

सुखविंदर सिंह

14 जुलाई, 2005

[आर. सी. लाहोटी, मु. न्या., जी. पी. माथुर एवं

पी. के. बालासुब्रमण्यन न्या.]

सेवा कानूनः

पंजाब पुलिस नियमः नियम 12.21 एवं 16.24 (ix)।

परिवीक्षाधीन-कर्तव्य से अनुपस्थिति-सेवा से निष्कासन-वैधता-कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति के कारण सेवा से छुट्टी पाने वाला परिवीक्षाधीन कांस्टेबल-उच्च न्यायालय ने माना कि कर्तव्य से अनुपस्थिति एक दुराचार था और निष्कासन आदेश नियम 16.24 (ix) के तहत औपचारिक जांच किए बिना उक्त कांस्टेबल पर आरोपित दंड के समान था, निष्कासन आदेश पूरी तरह से अवैध और कानून के विपरीत होने के कारण अपास्त कर कर दिया। शुद्धता-निर्धारितः एक परिवीक्षाधीन कर्मचारी परीक्षण के अन्तर्गत होता है और एक अस्थायी कर्मचारी को पद पर रहने का कोई अधिकार

नहीं होता है-नियोक्ता को परिवीक्षा अवधि के दौरान या उसके अंत में बिना कोई और कार्यवाही किए एक कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने का अधिकार है-वर्तमान मामले में, निष्कासन का एक साधारण आदेश पारित किया गया था- उच्च न्यायालय ने यह मानते हुए गलती की कि कांस्टेबल की ड्यूटी से अनुपस्थिति, उस आदेश की नींव थी जिसके अनुसार नियम 16.24 (ix)- के तहत जांच की आवश्यकता थी-उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त कर दिया गया।

प्रत्यर्थी जो कि एक पुलिस कांस्टेबल के रूप में नियुक्त किया गया था और वह छुट्टी के लिए आवेदन किए बिना अथवा कर्तव्य से अनुपस्थिति की अनुमति लेने के लिए कोई आवेदन किए बिना ड्यूटी से अनुपस्थित रहा। इसलिए, प्रत्यर्थी को पंजाब पुलिस नियमों के नियम 12.21 के तहत सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है क्योंकि उसके एक कुशल पुलिस अधिकारी होने की संभावना नहीं थी।

प्रत्यर्थी ने एक दीवानी मुकदमा दायर कर यह घोषणा करने की मांग की कि सेवामुक्त करने का आदेश अवैध और कानूनी रूप से निष्क्रिय था क्योंकि इसे बिना किसी जांच के और उसे सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना सजा के रूप में पारित किया गया था। अपीलार्थी ने तर्क दिया कि प्रत्यर्थी ने उसे तीन साल से भी कम समय सेवा में रखा और सेवामुक्ति आदेश पारित होने की तारीख को वह परिवीक्षाधीन था, इसलिए उसे

नियमों के तहत उचित रूप से सेवामुक्त किया गया। विचारण न्यायालय ने दावा डिक्री किया जिसकी पुष्टि प्रथम अपीलीय अदालत ने की थी। द्वितिय अपील में, उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कर्तव्य से अनुपस्थिति एक कदाचार था और सेवामुक्ति आदेश एक ऐसी सजा थी जो प्रत्यर्थी पर नियमों के नियम 16.24 (ix) के तहत औपचारिक जांच किए बिना लगाई गई थी और सेवामुक्ति आदेश पूरी तरह से अवैध और कानून के विपरीत होने के कारण खारिज कर दिया। इसलिए यह अपील प्रस्तुत की गई है।

अपील स्वीकार करते हुए न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया:-

1. यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कोई भी कर्मचारी चाहे परिवीक्षाधीन या अस्थायी हो, को मनमाने या बिना किसी कारण सेवा से मुक्त या पदावनत नही किया जायेगा। जहाँ एक वरिष्ठ अधिकारी, स्वंय को संतुष्ट करने के लिए कि संबंधित कर्मचारी को सेवा में बने रहना चाहिए या नहीं, इस उद्देश्य के लिए जांच करता है, वहां यह मानना गलत होगा कि जो जांच की गई थी, वह वास्तव में सजा देने के उद्देश्य से की गई थी। यदि प्रत्येक मामले में जहां किसी प्रकार की तथ्य-खोज जांच की जाती है, में कर्मचारी को या तो स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाता है या उसकी अनुपस्थित में जांच की जाती है, यह माना जाता है कि सेवा से निष्कासन या सेवा समाप्ति का आदेश दंडात्मक प्रकृति का है, यहां तक कि वरिष्ठ

अधिकारी द्वारा यह तय करने का एक सदभाविक प्रयास कि संबंधित कर्मचारी को सेवा में बनाए रखा जाना चाहिए या नहीं, दंड के आदेश के रूप में माने जाने की जोखिम रखता है। परिवीक्षा अवधि के दौरान एक परिवीक्षाधीन की सेवा समाप्ति का निर्णय या एक अस्थायी कर्मचारी की सेवा को समाप्त करने का आदेश विभिन्न विभागों के नियुक्ति प्राधिकारी या प्रशासनिक प्रमुखों द्वारा लिया जाता है, जो न्यायिक रूप से प्रशिक्षित नहीं होते हैं। विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों को एक कर्मचारी से काम लेना पड़ता है और वे यह तय करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं कि क्या एक कर्मचारी को उसके प्रदर्शन, आचरण और नौकरी के लिए समग्र उपयुक्तता के आधार पर सेवा में बने रहना चाहिए और एक स्थायी कर्मचारी बनाया जाना चाहिए या नहीं। एक परिवीक्षाधीन परीक्षण पर होता है और एक अस्थायी कर्मचारी को पद पर रहने का कोई अधिकार नहीं होता है। यदि वस्तुनिष्ठ आधारों पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक तथ्यों का पता लगाने के लिए केवल एक जांच आयोजित करना कि क्या कर्मचारी को सेवा में जारी रखना है या उसे स्थायी बनाना है, तो इस उद्देश्य के लिए की गई कार्यवाही को एक जांच "दंड अधिरोपित करने का आदेश और उसके परिणामस्वरूप सेवा से निष्कासन या सेवा समाप्ति का आदेश चरित्र में दंडात्मक प्रकृति" के रूप में मानी जाती है। परिवीक्षाधीन या अस्थायी कर्मचारी और स्थायी कर्मचारी के बीच मूलभूत अंतर को पूरी

तरह से समाप्त कर दिया जाएगा, जो कि बिल्कुल गलत होगा। [592-एफ-एच; 593-ए-सी]

एस. पी. वासुदेव बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर (1975) एससी 2292, बिशन लाल गुप्ता बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर (1978) एससी 363, तेल और प्राकृतिक गैस आयोग बनाम डॉ. एमडी. एस. इस्कंदर अली, एआईआर (1980) एससी 1242, महाराष्ट्र राज्य बनाम वीरप्पा आर. साबोजी, एआईआर (1980) एससी 42, गवर्निंग काउंसिल किदवई मेमोरियल इंस्टीट्यूट ऑफ ऑन्कोलॉजी बनाम डॉ. पांडुरंग गोडवलकर, एआईआर (1993) एससी 392, रवींद्र कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य हथकरघा निगम लिमिटेड, एआईआर (1987) एस. सी. 2408, कृष्णदेवराय शिक्षा ट्रस्ट बनाम एल. ए. बालकृष्ण, [2001] 9 एस. सी. सी. 319, पवनेंद्र नारायण वर्मा बनाम संजय गांधी पीजी ऑफ मेडिकल साइंसेज, [2002] 1 एससीसी 520 एवं पंजाब राज्य बनाम बलबीर सिंह, [2004] 11 एस. सी. सी. 743, पर भरोसा किया।

हरदीप सिंह बनाम हरियाणा राज्य, [1987] पूरक एस. सी. सी. 295 एवं यू. पी. राज्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला, [1991] 1 एस. सी. सी. 691, लागू नहीं होते।

श्रीमती राजिंदर कौर बनाम पंजाब राज्य, [1986] 4 एस. सी. सी. 141, को खारिज कर दिया।

2. मौजूदा मामले में न तो कोई औपचारिक विभागीय जांच हुई और न ही कोई प्रारंभिक तथ्यान्वेषी जांच आयोजित की गई थी और निष्कासित करने का एक साधारण आदेश पारित किया गया। परिवीक्षा की अवधि नियोक्ता को कर्मचारी की कार्य क्षमता, दक्षता, ईमानदारी और योग्यता को परखने का समय और अवसर प्रदान करती है और यदि वह पद के लिए उपयुक्त नहीं पाया जाता है, तो नियोक्ता को यह अधिकार है कि वह किसी अन्य कार्यवाही के बिना निर्धारित अवधि के दौरान या अंत में उसकी सेवा समाप्त कर सकता है, जिसे परिवीक्षा अवधि के रूप में जाना जाता है। मात्र प्रारंभिक जांच में कर्मचारी से स्पष्टीकरण मांगा जाना अन्यथा कर्मचारी के सेवा से निष्कासन या समाप्ति के हानिरहित आदेश को दंडात्मक प्रकृति का नहीं बनाएगा। इसलिए, उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि कर्तव्य से प्रत्यर्थी की अनुपस्थिति आदेश की नींव थी, जिसके कारण पंजाब पुलिस नियमों के नियम 16.24 (ix) के तहत प्रदत्त जांच की आवश्यकता थी। [593- डी-एच]

पुलिस अधीक्षक बनाम द्वारका दास (1979) 1 एस. एल. आर. 299 एवं अजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1983) एस. सी. 494, पर भरोसा किया गया।

शेर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1994) 1 पी. एल. आर. 456 (पी एंड एच) (एफ. बी.) अनुमोदित।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील सं. 4441/2001

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के आर. एस. ए. सं. 199/ 1995 द्वारा दिनांकित 30.01.2001 के निर्णय और आदेश से।

अपीलार्थी की ओर से एच. एस. मुंजराल और अरुण के. सिन्हा।

प्रत्यर्थी की ओर से नीरज कुमार जैन, भरत सिंह, आदित्य कुमार चौधरी, संजय सिंह और उग्र शंकर प्रसाद।

न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाया गया।

**जी. पी. माथुर, न्या०.**

1 यह अपील, विशेष अनुमति प्राप्त कर पंजाब राज्य और अन्य द्वारा पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 30.01.2001 को चुनौती देते हुए प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत की गई द्वितीय अपील को खारिज कर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी की ओर वाद में पारित डिक्री की पुष्टि की गई है।

2. प्रत्यर्थी सुखविंदर सिंह दिनांक 4.8.1989 को एक पुलिस कांस्टेबल के रूप में भर्ती हुआ और उसे पंजाब राज्य के अमृतसर जिले में 644 नंबर आवंटित किया गया था। उसे पुलिस भर्ती प्रशिक्षण महाविद्यालय जहांखेला में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था। वह दिनांक 22.2.1990 से छुट्टी देने या उसकी अनुपस्थिति के लिए अनुमति लेने के लिए कोई

आवेदन किए बिना ड्यूटी से अनुपस्थित रहा। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, अमृतसर द्वारा दिनांक 16.3.1990 को निम्नलिखित आदेश पारित कियाः-

> " इस जिले के सिपाही सुखविंदर सिंह नंबर 644/ए. एस. आर. को पंजाब पुलिस नियम 12.21 के तहत एक कुशल पुलिस अधिकारी बनने की संभावना नहीं होने के कारण दिनांक 16.3.1990 से सेवा से मुक्त किया जाता है।''

प्रत्यर्थी सुखविंदर सिंह ने अमृतसर के उप-न्यायाधीश की अदालत में एक दीवानी मुकदमा दायर किया, जिसमें यह घोषणा करने की मांग की गई कि अमृतसर के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा उसे सेवा से मुक्त करने का आदेश दिनांक 16.03.1990 अवैध और निष्क्रिय था क्योंकि यह बिना किसी जांच और उसे सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना सजा के रूप में पारित किया गया था। अपीलकर्ताओं ने विभिन्न आधारों पर मुकदमे का विरोध किया और उसमें मुख्य आधार यह था कि प्रत्यर्थी को तीन साल से भी कम समय में सेवा में हुआ है तथा आदेश पारित होने की तारीख को वह परिवीक्षाधीन था इसलिए, उसे वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा पंजाब पुलिस नियमों (इसके बाद 'नियम' के रूप में संदर्भित) के नियम 12.21 के तहत उचित रूप से सेवामुक्त कर दिया गया था। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक की राय थी कि प्रत्यर्थी के एक कुशल पुलिस अधिकारी बनने की संभावना नहीं थी इसलिए उसने नियम 12.21 के तहत शक्तियों का प्रयोग किया। आगे

यह दलील दी गई कि परिवीक्षाधीन होने के नाते प्रत्यर्थी को इस पद पर कोई अधिकार नहीं था। इस सेवामुक्ति के आदेश से प्रत्यर्थी पर कोई कलंक नहीं लगा और ना ही उस पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

3. विद्वान उप-न्यायाधीश, अमृतसर ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण करने के बाद यह अभिनिर्धारित किया कि अमृतसर के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.03.1990 अवैध, अमान्य और शून्य था एवं तदनुसार प्रत्यर्थी के पक्ष में डिक्री पारित की गयी कि वह सेवा में बना रहेंगा और अपने सिपाही के पद का वेतन, शक्तियों, विशेषाधिकारों और अन्य सेवा लाभ प्राप्त करने का हकदार रहेगा। अपीलार्थियों द्वारा दायर अपील को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा दिनांक 28.5.1994 को खारिज कर दिया गया और विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि की गई। अपीलकर्ताओं ने फिर उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील प्रस्तुत की, जिसे भी इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि प्रत्यर्थी को कर्तव्य से अनुपस्थिति के आधार पर नौकरी से निकाल दिया गया था। कर्तव्य से अनुपस्थिति एक दुराचार है और यह एक सज़ा थी जो नियमों के नियम 16.24 (ix) के तहत वांछित औपचारिक जांच के बिना उसे दी गई थी। परिणामस्वरूप दिनांक 16-03-1990 का सेवामुक्ति आदेश पूर्णतः अवैध एवं कानून के विपरीत था।

4. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि प्रत्यर्थी को दिनांक 4.8.1989 को नियुक्त किया गया था और उसने तीन साल की सेवा पूरी नहीं की थी इसलिए, वह नियमों के अनुसार केवल एक परिवीक्षाधीन था। आक्षेपित आदेश ना तो कलंकित है और ना ही उस पर कोई बुरा प्रभाव डालता है, क्योंकि यह केवल इस अभिव्यक्ति का उपयोग करता है कि प्रत्यर्थी के एक कुशल पुलिस अधिकारी बनने की संभावना नहीं है। नियमानुसार नियुक्ति प्राधिकारी को बिना किसी जांच के परिवीक्षाधीन को सेवामुक्त करने की शक्ति प्राप्त हैं, यदि उसकी राय में सिपाही के एक कुशल पुलिस अधिकारी बनने की संभावना नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रत्यर्थी के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं की गई है और इस तरह किसी औपचारिक जांच की कोई आवश्यकता नहीं है जिसमें दोषी कर्मचारी को अपना बचाव करने का अवसर दिया जाए।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि सेवामुक्ति का विवादित आदेश दिनांक 16.3.1990 हालांकि अप्रत्यक्ष रूप से हानिरहित प्रतीत होता है लेकिन वास्तव में दुराचार के आधार पर पारित किया गया है, अर्थात दिनांक 22.2.1990 से कर्तव्य से अनुपस्थित है इसलिए यह कदाचार के कृत्य पर आधारित है। उन्होंने आगे कहा कि उपरोक्त कदाचार आदेश की नींव होने के कारण, नियुक्ति प्राधिकारी के लिए एक औपचारिक विभागीय जांच करना अनिवार्य था जिसमें प्रत्यर्थी को अपना बचाव करने का अवसर मिलता।

6. नियमों का नियम 12.21 इस प्रकार हैः-

" एक सिपाही जिसके कुशल पुलिस अधिकारी होने की संभावना नहीं पाई जाती है, उसे अधीक्षक द्वारा नामांकन के तीन साल के भीतर किसी भी समय सेवामुक्ति दी जा सकती है। इन नियमों के अनुसार सेवामुक्ति के आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं होगी''

7. शेर सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (1994) 1 पी. एल. आर. 456 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने नियम 12.21, 19.3 व 19.5 के विस्तार की सामग्री और दायरे का काफी विस्तृत परीक्षण किया है। उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इन नियमों के अनुसार एक कांस्टेबल तीन साल की अवधि के लिए निगरानी में रखा जाता है। उस पर निगाह रखी जाकर निकट पर्यवेक्षण में रखा जाता है। उसे इस पद पर रहने का कोई अधिकार नहीं है और तीन साल की इस अवधि के दौरान उसकी सेवाएं किसी भी समय समाप्त की जा सकती हैं। वह सेवा में अपना पद तब तक सुरक्षित रख सकता है जब वह पुलिस अधीक्षक को आश्वस्त करे कि वह एक कुशल पुलिस अधिकारी साबित होने की योग्यता है। पूर्ण पीठ ने आगे कहा है कि नियमों में पुलिस अधीक्षक के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश दिए गए है जिनके आधार पर उन्हें एक कांस्टेबल के संबंध में एक राय बनानी होती है। यदि

प्रासंगिक सामग्री पर विचार करने पर, पुलिस अधीक्षक को ज्ञात होता है कि कोई विशेष कांस्टेबल सक्रिय, अनुशासित, आत्मनिर्भर, समयनिष्ठ, शांत, विनम्र या सीधा-सादा नहीं है या उसके पास अपने लिए आवश्यक ज्ञान या तकनीकी जानकारी नहीं है, तो वह यथोचित रूप से यह राय बना सकता है कि उसके एक कुशल पुलिस अधिकारी साबित होने की संभावना नहीं है। ऐसी स्थिति में पुलिस अधीक्षक नियम 12.21 के तहत अपनी शक्ति का उपयोग कर सकते हैं और कांस्टेबल को बल से मुक्त कर सकते हैं। उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से हम सहमत हैं। वास्तव में, यह दृष्टिकोण इस न्यायालय के द्वारा पारित निर्णय पुलिस अधीक्षक, लुधियाना और अन्य बनाम वी. द्वारका दास, [1979] (1) एस. एल. आर. 299 में दिए गए इस न्यायालय के फैसले के अनुरूप है, जहाँ यह निर्धारित किया गया कि यदि नियम 12.21 (3) और 12.21 को एक साथ पढ़ा जाता है तो यह प्रतीत होगा कि सिपाही रैंक के पुलिस अधिकारी के मामले में परिवीक्षा की अधिकतम अवधि का कार्यकाल तीन वर्ष का होता है, संबंधित पुलिस अधीक्षक को उस अवधि के भीतर उसे सेवामुक्ति करने की शक्ति होती है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के बाद नियम 12.21 के तहत सेवामुक्ति की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है और इसके परिणामस्वरूप यदि उस अवधि की समाप्ति के बाद एक अक्षम पुलिस अधिकारी के संबंध में कार्यवाही प्रस्तावित हो तो नियमों के अध्याय 16 के अनुसार कार्यवाही आवश्यक है,

जो पुलिस बल से बर्खास्तगी सहित विभिन्न दंडों को लागू करने के लिए प्रावधान करता है। तीन साल की अवधि समाप्त होने के बाद नियम 12.21 के तहत सेवामुक्ति का कोई साधारण आदेश पारित नहीं किया जा सकता है, उस स्थिति में संविधान का अनुच्छेद 311 लागू होगा।

8. परिवीक्षा अवधि के दौरान या उसके अंत में परिवीक्षाधीन की सेवा की समाप्ति सामान्य रूप से और अपने आप में एक सजा नहीं होगी क्योंकि इस प्रकार नियुक्त कमर्चारी को आगे इस पद पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं है जैसा कि एक निजी नियोक्ता द्वारा परिवीक्षा पर नियोजित कर्मचारी हकदार है। इसलिए परिवीक्षा की अवधि स्वामी को परिवीक्षाधीन के काम का बारीकी से निरीक्षण करने और परिवीक्षा की अवधि समाप्त होने तक यह तय करने का एक मूल्यवान अवसर प्रदान करती है कि कर्मचारी को नियमित सेवा में शामिल करके उसे बनाए रखा जाए या उसकी सेवा को समाप्त कर दिया जाए। परिवीक्षा की अवधि पद- पद या मालिक के अनुसार भिन्न हो सकती है और मालिक के लिए परिवीक्षा की अवधि निर्धारित करना अनिवार्य नही है। नियोक्ता को किसी व्यक्ति को परिवीक्षा पर रखे बिना उसे नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है। कर्मचारी का प्रदर्शन देखने के लिए परिवीक्षा पर रखना और उक्त अवधि के दौरान प्रदर्शन का निरीक्षण किया जाना नियोक्ता का विशेषाधिकार है। (अजीत सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, एआईआर (1983) एससी 494)।

9. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि न्यायालय को आदेश दिनांक 16.3.1990 से पीछे जाना चाहिए, जो कि वास्तव में प्रत्यर्थी की दिनांक 22.2.1990 से कर्तव्य से निरंतर अनुपस्थिति के आधार पर पारित किया गया था और जैसा कि उक्त आदेश कदाचार के एक कार्य पर आधारित था, सेवामुक्ति का आदेश वास्तव में सजा के रूप में बर्खास्तगी का आदेश था और चूंकि कोई औपचारिक जांच नहीं की गई थी और प्रत्यर्थी को आक्षेपित आदेश में अपना बचाव करने का अवसर नहीं दिया गया था, इसलिए विवादित आदेश पूरी तरह से अवैध है और रद्द किये जाने योग्य है। विद्वान अधिवक्ता ने उनके तर्को के समर्थन में 'हरदीप सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य [1987] पूरक एस. सी. सी. 295' प्रस्तुत किया गया है। इस मामले में अपीलार्थी हरदीप सिंह 1979 में हरियाणा में पुलिस सेवा में शामिल हुआ था और अपंजीकृत हरियाणा पुलिस संघ का सदस्य बना था, जो हरियाणा पुलिस में सेवारत पुलिस कर्मियों की सेवा स्थितियों में सुधार के लिए कार्य कर रहा था और कई अवसरों पर सेवा स्थितियों में सुधार के लिए अभ्यावेदन प्रस्तुत किये। अपने अभियान के हिस्से के रूप में एसोसिएशन ने जुलाई के महीने में अपने सभी सदस्यों को "भोजन न लेने के अभियान" में भाग लेने का आह्वान किया, जो 15.8.1982 को प्रारंभ हुआ। उस दिन अपीलार्थी और 16,000 अन्य सिपाही और हेड सिपाही अपने कर्तव्यों पर उपस्थित हुए लेकिन उन्होंने भोजनालय में भोजन नहीं किया। राज्य सरकार ने बिना किसी आरोप पत्र के नियम

12.21 के तहत 425 पुलिसकर्मियों को बर्खास्त/हटाने का आदेश जारी किया। इस अदालत ने ऐसे 154 पुलिसकर्मियों द्वारा दायर रिट याचिका को स्वीकार कर लिया था। अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की जिसे खारिज कर दिया गया। हरियाणा राज्य द्वारा प्रस्तुत जवाबदावा और मामले के तथ्यों की पूरी तरह से जांच करने पर यह अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची कि सेवामुक्त करने का आदेश उनके संघ की गतिविधियों के कारण सजा के रूप में पारित किया गया था, विशेष रूप से जो दि० 15.8.2002 को भोजनालय में भोजन करने से परहेज करके सेवा शर्तों में सुधार के लिए संघ के विरोध को व्यक्त करने के आह्वान में भाग ले रहे थे, और यह सेवामुक्त करने का एक साधारण आदेश नहीं था। न्यायालय ने विशेष रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर यह नहीं कहा जा सकता है कि सेवामुक्त करने का आदेश सेवा के नियमों और शर्तों के अनुसार परिवीक्षाधीन की सेवा से हटाने का एक साधारण आदेश था, क्योंकि यह कदाचार के कारण सेवा से बर्खास्त करने के समान है। हमारी राय में यह न्यायिक दृष्टांत प्रत्यर्थी के लिए सहायक नहीं हो सकता है क्योकि इस न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि आदेश कर्मचारी की संघ गतिविधियों और विरोध व्यक्त करने के आह्वान में उसकी भागीदारी के कारण पारित किया गया।

10. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा न्यायिक दृष्टांत उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला, [1991] 1 एससीसी 691 पर

भरोसा किया। इस मामले में कर्मचारी कौशल किशोर शुक्ला को सहायक लेखा परीक्षक के रूप में 18.2.1977 का निश्चित अवधि के लिए तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था। उक्त अवधि कई अवसरो पर बढाई गई तथा अंतिम विस्तार दिनांक 21.01.1980 को दिया गया जो अवधि दिनांक 28.02.1981 को समाप्त होनी थी। उसकी सेवाएं दिनांक 23.09.1980 को समाप्त की गई। उसके सेवा समाप्ति आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई कि उस पर लगाये गये कदाचार के आरोपो के संबंध में एकपक्षीय जांच की गई एवं उसे सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था। इन आरोपों को जवाबी हलफनामे में भी संदर्भित किया गया था, जो उच्च न्यायालय के समक्ष राज्य की ओर से दायर किया गया था। यह कहा गया कि सेवा की समाप्ति का आदेश कदाचार के आरोपों और एकतरफा जांच रिपोर्ट पर आधारित था। उच्च न्यायालय ने कर्मचारी की याचिका स्वीकार कर ली और समाप्ति आदेश को रद्द कर दिया। राज्य द्वारा दायर अपील को इस न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया था और उच्च न्यायालय के आदेश को निम्न अवधारणा के साथ अपास्त कर दिया गया।

> " एक अस्थायी सरकारी कर्मचारी होने के नाते प्रत्यर्थी को इस पद पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं था, और सक्षम प्राधिकारी ने उस पर कोई कलंक लगाए बिना बर्खास्तगी के बिना आरोपित आदेश द्वारा उसकी सेवाओं को समाप्त कर दिया। सेवा समाप्ति आदेश प्रत्यर्थी पर किसी भी

कदाचार का आरोप नहीं लगाता है। प्रत्यर्थी की उपयुक्तता और सेवा में बने रहने का पता लगाने के लिए प्रत्यर्थी के खिलाफ जो जांच की गई थी, वह प्रारंभिक प्रकृति की थी। दंडात्मक कार्यवाही का कोई तत्व मौजूद नहीं था क्योंकि कोई आरोप नहीं लगाया गया था, कोई जांच अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था, कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया था, इसके बजाय एक प्रारंभिक जांच की गई थी और प्रारंभिक जांच की रिपोर्ट के आधार पर सक्षम प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी की सेवाओं को उसके सेवा नियमों और शर्तों के अनुसार बिना आरोपित आदेश द्वारा समाप्त कर दिया था। केवल यह तथ्य कि सेवा समाप्ति का आदेश के जारी होने से पहले, प्रत्यर्थी के खिलाफ एक जांच लड़कों के कोष की अनधिकृत लेखा परीक्षा के आरोपों के संबंध में की गई थी, अभिनिर्धारित किया गया कि सेवा समाप्ति के आदेश की प्रकृति को दंड में नहीं बदलता है क्योंकि प्रारंभिक जांच के बाद सक्षम प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी को दंडित करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया, इसके बजाय उसने सेवा अनुबंध और नियमों के अनुसार प्रत्यर्थी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया। प्रत्यर्थी के खिलाफ बचाव के रूप में लगाए गए आरोप प्रति शपथ पत्र जो कि

अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत किया गया, भी सेवा समाप्ति के आदेश की प्रकृति व चरित्र को परिवर्तित नही करते है।"

11. एस. पी. वासुदेव बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, ए. आई. आर. (1975) एस. सी. 2292 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां किसी ऐसे व्यक्ति के पदावनति का आदेश जिसको तत्पर रहने का कोई अधिकार नहीं था, यह नहीं दर्शाता है कि उसे सजा के रूप में पदावनत किया गया अथवा उस पर कोई कलंक लगाया गया, अदालतें आम तौर पर उस आदेश के पीछे यह देखने के लिए नहीं जाती हैं कि क्या उस आदेश के पीछे कोई प्रेरक तत्व थे। बिशन लाल गुप्ता बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 363 में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि परिवीक्षाधीन के खिलाफ जांच करने का इरादा दंडित करने के लिए एक पूर्ण विभागीय परीक्षण आयोजित करना नहीं था, बल्कि केवल परिवीक्षाधीन के सेवा में बने रहने के लिए उपयुक्तता निर्धारित करने के लिए एक संक्षिप्त जांच थी और परिवीक्षाधीन को लिखित रूप में जवाब देने का पर्याप्त अवसर दिया गया था, जो भी कारण बताए जाने के नोटिस में उसके खिलाफ आरोप लगाया गया था, ऐसी संक्षिप्त जांच के बाद सेवा समाप्ति के निष्कलंक आदेश को सजा का आदेश नहीं कहा जा सकता था जो उसे संविधान के अनुच्छेद 311 द्वारा प्रदत्त पूर्ण-स्तरीय जांच का हकदार बनाता हो। ऑयल और प्राकृतिक गैस आयोग

बनाम डॉ. मो. एस. इस्कंदर अली, ए. आई. आर. (1980) एस. सी. 1242, में निम्न निर्धारित किया गया है:-

> " जहाँ परिवीक्षाधीन की सेवा का संक्षिप्त इतिहास यह दर्शाता है कि एक अस्थायी पद पर उसने कभी भी संतोषजनक कार्य नही किया और उसे सेवा में बनाए रखने के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया और यही कारण था कि भले ही किसी प्रकार की जांच शुरू की गई थी, लेकिन इसे आगे नहीं बढ़ाया गया और न ही कोई सजा दी गई। इन परिस्थितियों में, यदि नियुक्ति प्राधिकारी परिवीक्षाधीन की सेवाओं को समाप्त करना समीचीन समझे तो यह नहीं कहा जा सकता कि सेवा समाप्ति का आदेश अनुच्छेद 311 के प्रावधानों को आकर्षित करता है, जब नियुक्ति प्राधिकारी को बिना कोई कारण बताए सेवा समाप्त करने का अधिकार था।''

उपरोक्त सभी निर्णय तीन विद्वान न्यायाधीशों की पीठों द्वारा दिए गए हैं।

12. राज्य में इसी प्रश्न पर काफी विस्तार से विचार किया गया था। महाराष्ट्र राज्य बनाम वीरप्पा आर. साबोजी ए. आई. आर. (1980) एस.

सी. 42, में इसी प्रश्न पर विस्तार से विचार किया जाकर निम्न मत प्रकट किया गया है:-

> " आम तौर पर इस न्यायालय द्वारा अधिकांश मामलों में निर्धारित नियम यह है कि आपको आदेश को देखना होगा और यह पता लगाना होगा कि क्या यह सरकारी कर्मचारी पर कोई कलंक लगाता है। ऐसे मामले में यह कोई धारणा नहीं है कि आदेश मनमाना या दुर्भावनापूर्ण है जब तक कि पंजाब राज्य सरकार द्वारा एक बहुत मजबूत मामला नहीं बनाया जाता हो और चुनौती देने वाले सरकारी कर्मचारी द्वारा साबित नहीं किया जाता हो।"

किदवई मेमोरियल इंस्टीट्यूट ऑफ ऑन्कोलॉजी की शासी परिषद बैंगलोर बनाम डॉ. पांडुरंग गोडवलकर और अन्य, ए. आई. आर. (1993) एस. सी. 392, में इस सिद्धांत को दोहराया गया था और यह माना गया था कि जहां एक कर्मचारी की सेवा को परिवीक्षा की अवधि के दौरान समाप्त किया जाता है या जबकि उसकी नियुक्ति अस्थायी आधार पर होती है, कुछ प्रारंभिक जांच के बाद सेवा समाप्ति के आदेश द्वारा यह नहीं माना जा सकता है कि सेवा समाप्ति का आदेश जारी करने से पहले उसके खिलाफ कुछ जांच की गई थी, इसलिए यह वास्तव में उसे किसी आरोप पर सेवा से हटाने के समान है, अर्थात दंडात्मक प्रकृति का है।

13. रवींद्र कुमार मिश्रा बनाम यू. पी. राज्य हथकरघा निगम लिमिटेड और अन्य, ए. आई. आर. (1987) एस. सी. 2408, में अपीलार्थी को 30.10.1976 को नियुक्त किया गया था और अस्थायी पद पर कार्यरत रहते हुए भी उन्हें दो पदोन्नति मिल चुकी थी और वर्ष 1982 तक वह उप उत्पादन प्रबंधक के पद पर कार्यरत था। दिनांक 22.11.1982 को उसे निलंबित कर दिया गया था और निलंबन आदेश में कहा गया कि केंद्रीय प्रबंधक द्वारा की गई प्रारंभिक जांच के परिणामस्वरूप यह पता चला था कि अपीलार्थी कदाचार, कर्तव्य में लापरवाही, कुप्रबंधन और टेरिकोट कपड़े के काल्पनिक उत्पादन को दिखाने के लिए जिम्मेदार था। निलंबन आदेश को दिनांक 1.2.1983 को रद्द कर दिया गया था और उसके बाद 10.2.1983 पर उनकी सेवाओं को समाप्त करने का एक साधारण आदेश पारित किया गया था जिसमें कहा गया था कि उनकी सेवाओं की अब आवश्यकता नहीं है और नोटिस प्राप्त होने की तारीख से उनकी सेवा को समाप्त माना जाएगा। इसमें आगे यह उल्लेख किया गया था कि वह नोटिस अवधि के बदले में एक महीने का वेतन प्राप्त करने का हकदार होगा। समाप्ति आदेश को अपीलार्थी द्वारा इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि यह दंडात्मक प्रकृति का था, जो इस तथ्य से भी प्रदर्शित होता है कि समाप्ति के आदेश से कुछ समय पहले एक निलंबन आदेश पारित किया गया था जिसमें उसके खिलाफ कदाचार के विशिष्ट आरोपो का उल्लेख किया गया था। पहले

के कई फैसलों का उल्लेख करने के बाद इस न्यायालय ने रिपोर्ट के चरण संख्या 6 के अनुसार कर्मचारी द्वारा की गई चुनौती को खारिज कर दियाः

> "इस न्यायालय के आधिकारिक निर्णयों में, समाप्ति आदेश के प्रभाव का पता लगाने के लिए 'उद्देश्य' और 'नींव' की अवधारणा बताई गई है। यदि अस्थायी सेवा में अधिकारी की सेवा समाप्ति करने को परिचालन उद्देश्य के रूप में लिया जाता है तो आदेश को दंडात्मक नहीं माना जाता है जबकि यदि समाप्ति का आदेश उस पर आधारित है, तो सेवा समाप्ति को एक दंडात्मक कार्रवाई माना जाता है। यह इस तथ्य के कारण है कि प्रत्येक नियोक्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह अस्थायी पदधारी की सेवा का आकलन करे ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उसे सेवा में होना चाहिए या नही या उसकी नियुक्ति की पुष्टि या उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह पता लगाना भी आवश्यक है कि क्या अधिकारी को अस्थायी आधार पर कुछ और समय के लिए परीक्षण पर रखा जाना चाहिए। चूंकि अस्थायी कर्मचारी या कार्यवाहक कर्मचारी दोनों के संबंध में ऐसे उच्च पद पर मूल्यांकन आवश्यक होगा, केवल इसलिए कि उचित प्राधिकरण एक मूल्यांकन करने के लिए आगे बढ़ता है और इसके विचार का एक रिकॉर्ड छोड़ देता

है। इस तरह के मूल्यांकन के बाद सेवा समाप्ति का आदेश जो कि दंडात्मक प्रकृति का है, बनाने के लिए उपयोग करने के लिए उपलब्ध नहीं होंगे।''

14. कृष्णदेवराय एजुकेशन ट्रस्ट एवं अन्य बनाम एल. ए. बालकृष्ण, [2001] 9 एस. सी. सी. 319, में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक परिवीक्षाधीन व्यक्ति परीक्षण पर होता है और यदि उसकी सेवाएं संतोषजनक नहीं पाई जाती हैं, तो नियोक्ता, नियुक्ति के पत्र के संदर्भ में उक्त सेवाओं को समाप्त करने का अधिकार रखता है। केवल यह तथ्य कि चुनौती के जवाब में नियोक्ता यह कहता है कि सेवाएं संतोषजनक नहीं थीं, वास्तव में इसका मतलब यह नहीं होगा कि परिवीक्षाधीन की सेवाओं को सजा के रूप में समाप्त कर दिया गया था।

15. पवनेंद्र नारायण वर्मा बनाम संजय गांधी पीजीआई ऑफ मेडिकल विज्ञान एवं अन्य, [2002] 1 एस. सी. सी. 520, में इस न्यायालय ने हाल ही बड़ी संख्या में पहले के निर्णयों का हवाला देने के बाद इस बिंदु पर कानून निम्नलिखित तरीके से बहुत स्पष्ट रूप से समझाया है:-

" न्यायिक रूप से विकसित परीक्षणों में से एक यह निर्धारित करने के लिए कि क्या समाप्ति का एक आदेश दंडात्मक है. यह देखने के लिए कि क्या सेवा समाप्ति से

पूर्व (अ) एक पूर्ण औपचारिक जांच (ब) नैतिक अधमता या दुराचार से जुड़े आरोप जो (स) दोषसिद्धी में परिणत हुआ। यदि तीनों कारक मौजूद हैं तो सेवा समाप्ति को दंडात्मक माना गया है चाहे वह सेवा समाप्ति के किसी भी आदेश के रूप में हो। इसके विपरीत यदि तीन कारकों में से कोई एक गुम है तब सेवा समाप्ति को बरकरार रखा गया है। सामान्यतः जब किसी परिवीक्षाधीन की नियुक्ति समाप्त हो जाती है इसका मतलब यह है कि परिवीक्षाधीन व्यक्ति नौकरी के लिए अयोग्य है, चाहे वह कारण दुराचार या अयोग्यता का, चाहे इसमें जो भी भाषा इस्तेमाल की गयी हो सेवा समाप्ति आदेश हो सकता है। हालांकि सख्त रूप में कहा जाये तो सेवा समाप्ति कलंक है, एक साधारण सेवा समाप्ति कलंक नहीं है। सेवा समाप्ति आदेश जो स्पष्ट रूप से बताता है कि प्रत्येक आदेश में क्या निहित है किसी परिवीक्षाधीन की नियुक्ति की समाप्ति भी कलंकित नहीं है। कलंक की श्रेणी में लाने के लिए, आदेश ऐसी भाषा में होना चाहिए जो नौकरी के लिए केवल अनुपयुक्तता के अलावा कुछ और आरोप लगाता हो।"

16. पंजाब राज्य और अन्य बनाम बलबीर सिंह, [2004] 11 एस. सी. सी. 743, नियमावली के नियम 12.21 पर एक सीधा प्रकरण है। यहाँ

भी पहले के अनेक निर्णयों पर विचार करने के बाद न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किये:-

> " निष्कासन का आदेश, प्रत्यक्ष तौर पर प्रथम दृष्टया दंडात्मक नहीं है, यह पंजाब पुलिस नियम 12.21 के संदर्भ में है, लेकिन सवाल अभी भी यह है कि क्या वह घटना जिसके कारण उस आदेश को पारित किया गया था, उद्देश्य या प्रेरक कारक था या सेवामुक्त करने के आदेश का आधार था। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या दुराचार सेवा समाप्ति आदेश का आधार या उद्देश्य है या नहीं, यह परीक्षण यह सवाल पूछने पर लागू होता है कि "जांच का उद्देश्य" क्या था। यदि कर्मचारी की ओर से किसी भी कदाचार का पता लगाने के उद्देश्य से कोई जांच या मूल्यांकन किया जाता है और इस कारण से उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई, तो यह प्रकृति में दंडात्मक होगा। दूसरी ओर, यदि ऐसी जांच या मूल्यांकन का उद्देश्य किसी विशेष कार्य के लिए किसी कर्मचारी की उपयुक्तता का निर्धारण करना है, तो ऐसी सेवा समाप्ति सरल और प्रकृति में दंडात्मक नहीं होगी। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या, वास्तव में, सेवामुक्ति प्रकृति दंडात्मक है, व "जांच की प्रकृति" का पता लगाना है अर्थात क्या सेवा समाप्ति से पहले प्रत्यर्थी की ओर से

कदाचार से जुड़े आरोपों की पूर्ण पैमाने पर औपचारिक जांच की जाती है, जिसकी परिणति आरोप का पता लगाने में होती है, और "जांच का उद्देश्य" अर्थात क्या जांच का उद्देश्य कर्मचारी की ओर से किसी भी कदाचार का पता लगाना है या इसका उद्देश्य कर्मचारी/प्रत्यर्थी के बारे में यह पता लगाना है कि उसके एक कुशल पुलिस अधिकारी के रूप में साबित होने की संभावना नहीं है।''

17. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने भी श्रीमती राजिंदर कौर बनाम पंजाब एंव अन्य राज्य, [1986] 4 एस. सी. सी. 141, पर भरोसा रखा है, जो दो विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा लिया गया निर्णय है। इस मामले में अपीलार्थी 07.05.1979 को महिला सिपाही के रूप में नियुक्ति की गई और प्रशिक्षण पूरा करने के बाद उन्हें मार्च, 1980 में पुलिस लाइन में तैनात किया गया। पुलिस अधीक्षक, होशियारपुर ने नियमों के नियम 12.21 के तहत दिनांक 9.9.1980 के आदेश द्वारा अपीलार्थी को सेवामुक्त कर दिया। सेवामुक्ति का आदेश निम्नानुसार हैः

" महिला सिपाही राजिंदर कौर नंबर 732 के एक कुशल पुलिस अधिकारी साबित होने की संभावना नहीं है, इसलिए उसे आज (9 सितंबर, 1980) से पंजाब पुलिस नियम 12.21 के तहत पुलिस बल से सेवामुक्त किया जाता है, ओ. आर.

में आदेश जारी हो एवं सभी संबंधितों को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु।''

अपीलार्थी की ओर से मुख्य तर्क यह था कि पुलिस उपाधीक्षक द्वारा अपीलार्थी के चरित्र के बारे में इस आरोप की जांच की गई थी कि वह एक सिपाही जसवंत सिंह के साथ एक या दो रातों तक महलपुर में रही और उसमें साक्ष्य दर्ज किया गया था, जिसमें अपीलार्थी को सुनवाई या गवाहों से जिरह करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था और उसके कदाचार के आधार पर जांच पूरी होने के बाद विवादित आदेश दिया गया था, जिससे उसके सेवा जीवन पर कलंक लगा था। इस तर्क को स्वीकार कर लिया गया और इस निष्कर्ष पर कि हालांकि सेवामुक्ति का आदेश नियमो के नियम 12.21 के अनुसार जारी किया गया था किंतु यह वास्तव में दुराचार के आधार पर पारित किया गया जैसा कि उसकी अनुपस्थिति में आरोप की जांच में पाया गया था और आगे कि यद्यपि आदेश में हानिरहित शब्दों का प्रयोग किया गया था, आदेश केवल कदाचार के आधार पर सेवा से बर्खास्तगी के आदेश छलावा था, सेवामुक्ति के विवादित आदेश को अपास्त कर दिया गया था। हम इस मामले में लिए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, इस न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि भले ही किसी प्रकार की प्रारंभिक जांच या तथ्य खोजने वाली जांच आयोजित की जाती है जिसमें कर्मचारी को सुनवाई का अवसर नहीं दिया जाता है, लेकिन परिवीक्षाधीन के सेवामुक्ति के आदेश को सजा के

आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि नियुक्ति प्राधिकारी को यह निर्णय लेने से पहले सभी प्रासंगिक तथ्यों का पता लगाना आवश्यक है कि परिवीक्षाधीन को सेवा में रखा जाना चाहिए या नहीं। श्रीमती राजिंदर कौर बनाम पंजाब राज्य, में पारित निर्णय को अप्रभावी किया गया।

18. यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि किसी भी कर्मचारी, चाहे वह परिवीक्षाधीन हो या अस्थायी, को बिना किसी कारण के मनमाने ढंग से सेवामुक्त या पदावनत नहीं किया जाएगा। जहां एक वरिष्ठ अधिकारी, खुद को संतुष्ट करने के लिए कि क्या संबंधित कर्मचारी को सेवा में बने रहना चाहिए या नहीं, इस उद्देश्य के लिए जांच करता है, यह मानना गलत होगा कि जो जांच की गई थी, वह वास्तव में सजा देने के उद्देश्य से की गई थी। यदि प्रत्येक मामले में जहां किसी प्रकार की तथ्य खोजने वाली जांच की जाती है, जिसमें कर्मचारी को या तो स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाता है या जांच उसकी अनुपस्थिति में की जाती हो, तो यह माना जाता है कि सेवामुक्ति या सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दंडात्मक प्रकृति का है, यहां तक कि वरिष्ठ अधिकारी द्वारा यह तय करने का एक प्रामाणिक प्रयास भी है कि क्या संबंधित कर्मचारी को सेवा में बनाए रखा जाना चाहिए या दंड के आदेश के रूप में बताए जाने का जोखिम नहीं होना चाहिए। परिवीक्षा की अवधि के दौरान एक परिवीक्षाधीन को छुट्टी देने का निर्णय या एक अस्थायी कर्मचारी की सेवा को समाप्त करने का आदेश विभिन्न विभागों के नियुक्ति प्राधिकारी या प्रशासनिक प्रमुखों द्वारा लिया जाता है,

जो न्यायिक रूप से प्रशिक्षित नहीं हैं। विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों को एक कर्मचारी से काम लेना पड़ता है और वे यह तय करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं कि क्या एक कर्मचारी को उसके प्रदर्शन, आचरण और नौकरी के लिए समग्र उपयुक्तता के आधार पर सेवा में बने रहना चाहिए और एक स्थायी कर्मचारी बनाया जाना चाहिए या नहीं। एक परिवीक्षाधीन परीक्षण पर होता है और एक अस्थायी कर्मचारी को पद पर रहने का कोई अधिकार नहीं होता है। यदि वस्तुनिष्ठ आधारों पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक तथ्यों का पता लगाने के लिए केवल एक जांच आयोजित करना कि क्या कर्मचारी को सेवा में जारी रखना है या उसे स्थायी बनाना है, तो इस उद्देश्य के लिए की गई कार्यवाही को एक जांच "दंड अधिरोपित करने का आदेश और उसके परिणामस्वरूप सेवा से निष्कासन या सेवा समाप्ति का आदेश चरित्र में दंडात्मक प्रकृति" के रूप में मानी जाती है। परिवीक्षाधीन या अस्थायी कर्मचारी और स्थायी कर्मचारी के बीच मूलभूत अंतर को पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाएगा, जो कि बिल्कुल गलत होगा।

19. वर्तमान मामले में न तो कोई औपचारिक विभागीय जांच हुई और न ही कोई प्रारंभिक तथ्य खोज जांच आयोजित की गई थी और सेवामुक्त करने का एक साधारण आदेश पारित किया गया था। उच्च न्यायालय ने जवाबदावा में किये गये कथन के आधार पर यह माना है कि प्रत्यर्थी अपनी सेवा की कम अवधि के दौरान अनुपस्थित होने का आदी था

और उससे यह निष्कर्ष निकाला है कि यह कर्तव्य से उसकी अनुपस्थिति थी जो वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक के विचार में महत्वपूर्ण थी कि कर्तव्य से अनुपस्थिति एक कदाचार है। उच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि प्रत्यर्थी को सेवा से मुक्ति देने के आदेश और कर्तव्य से उसकी अनुपस्थिति के बीच सीधा संबंध है और इसलिए, उसे सेवा से मुक्ति देने के आदेश को दंडात्मक प्रकृति के रूप में देखा जाएगा, जिसमें नियमों के नियम 16.24 के तहत नियमित जांच का आह्वान किया जाएगा। हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष पूरी तरह से गलत निकाला है कि दिनांक 16-03-1990 का सेवामुक्त करने का आदेश वास्तव में कदाचार पर आधारित था और दंडात्मक प्रकृति का था, जो कि एक नियमित विभागीय जांच पर आधारित होना चाहिए था। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्रत्यर्थी लगभग आठ महीने पहले नियुक्त होने के कारण परिवीक्षा पर था। जैसा कि अजीत सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब एवं अन्य राज्य (उपर्युक्त) में निर्धारित किया गया, परिवीक्षा की अवधि नियोक्ता को कर्मचारी की कार्य क्षमता, दक्षता, ईमानदारी और योग्यता को परखने का समय और अवसर प्रदान करती है और यदि वह पद के लिए उपयुक्त नहीं पाया जाता है, तो नियोक्ता को यह अधिकार है कि वह किसी अन्य कार्यवाही के बिना निर्धारित अवधि के दौरान या अंत में उसकी सेवा समाप्त कर सकता है, जिसे परिवीक्षा अवधि के रूप में जाना जाता है। मात्र प्रारंभिक जांच में कर्मचारी से स्पष्टीकरण मांगा जाना अन्यथा कर्मचारी के सेवा से निष्कासन या समाप्ति के

हानिरहित आदेश को दंडात्मक प्रकृति का नहीं बनाएगा। इसलिए, उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि कर्तव्य से प्रत्यर्थी की अनुपस्थिति आदेश की नींव थी, जिसके कारण पंजाब पुलिस नियमों के नियम 16.24 (ix) के तहत प्रदत्त जांच की आवश्यकता थी।

20. उपवर्णित कारणों के आधार पर हमारी राय है कि उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कानूनन पूर्ण रूप से त्रुटिपूर्ण है और उसे अपास्त किया जाना चाहिए। अपील तदनुसार स्वीकार की जाती है तथा उच्च न्यायालय व विद्वान उप न्यायाधीश एवं अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय व डिक्री अपास्त किए जाते है। वादी-प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत वाद खारिज किया जाता है।

21. कोई हर्जा आदेश नहीं।

अपील स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **सुनील कुमार गोयल** (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।